प्रत्यक्षीकरण (perception)

प्रत्यक्षीकरण एक **जटिल मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया** है। इस प्रक्रिया के माध्यम से व्यक्ति अपने **बाह्य वातावरण में घटित घटनाओं** के बारे में जानकारी प्राप्त करता है, फिर उस जानकारी का **विश्लेषण और व्याख्या** करता है। प्रत्येक प्राणी जिस वातावरण में रहता है, वहाँ अनेक प्रकार की **उत्तेजनाएँ (stimuli)** मौजूद होती हैं। प्राणी इन उत्तेजनाओं को अपनी इंद्रियों के माध्यम से ग्रहण करता है और फिर उनके प्रति **शारीरिक व्यवहार** तथा **वाचिक व्यवहार** के रूप में प्रतिक्रिया करता है।

सामान्यतः हम यह नहीं सोचते कि यह पूरी प्रक्रिया **कैसे घटित होती है**, क्योंकि हमें यह एक बहुत ही सरल और स्वाभाविक प्रक्रिया प्रतीत होती है। लेकिन जो मनोवैज्ञानिक प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया की **वैज्ञानिक व्याख्या** करना चाहते हैं, उनके लिए यह कार्य बिल्कुल भी सरल नहीं होता। उन्हें इस प्रक्रिया को समझने में अनेक कठिनाइयों और समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

वास्तव में प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया को **पहेली (puzzle) को हल करने** के समान माना जा सकता है। इसमें व्यक्ति को वातावरण से मिलने वाले **अनेक संकेतों (cues)** को एकत्रित करना पड़ता है। यदि ये संकेत **स्पष्ट, सही और शुद्ध** होते हैं, तो प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया सरल हो जाती है और व्यक्ति समस्या का समाधान भी आसानी से कर लेता है।

इसके विपरीत, यदि संकेत **अशुद्ध या अस्पष्ट** होते हैं, अर्थात् बाह्य वातावरण में उपस्थित उद्दीपकों की विशेषताएँ आपस में **संगत (corresponding)** नहीं होती हैं, तो प्राणी न तो सही ढंग से प्रत्यक्षीकरण कर पाता है और न ही समस्या का समाधान कर पाता है।

प्रत्यक्षीकरण से संबंधित सबसे पहली और प्रमुख समस्या यह होती है कि **व्यक्ति अपने भौतिक जगत् से संपर्क कैसे स्थापित करता है**। अर्थात वह वातावरण में उपस्थित उद्दीपकों के बारे में **गुणात्मक (qualitative)** और **परिमाणात्मक (quantitative)** ज्ञान कैसे प्राप्त करता है, तथा उनकी **दिक-स्थितियों (spatial positions)** और **गतियों (movements)** के बारे में सही निर्णय कैसे लेता है।

मनोवैज्ञानिक अनुसंधान में इसी मूल समस्या के अध्ययन को **प्रत्यक्षीकरण (Perception)** कहा जाता है।

मनोविज्ञान एवं दर्शन (Psychology and Philosophy)

ऐतिहासिक रूप से प्रत्यक्षीकरण प्रक्रम दर्शन शास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत ही माना जाता है जिसे हम ज्ञान मीमांसा (Epistemology) कहते है जिसमें यह अध्ययन किया जाता है कि भौतिक जगत हमारे अनुभवों से स्वतंत्र है, यदि ऐसा है, तो हम इसके तत्त्वों के बारे में कैसे ज्ञान प्राप्त करते हैं और ज्ञान (knowledge) की शुद्धता (accuracy) को कैसे निर्धारित करते है? जबकि मनोवैज्ञानिकों का दृष्टिकोण इससे भिन्न है। मनोवैज्ञानिक भौतिक जगत (physical world) के होने न होने की समस्या से नहीं उलझते क्योंकि वे भौतिक जगत की सत्ता को उसी प्रकार मानते है जिस प्रकार भौतिक शास्त्र को शाखाओं Electo-Magnetic and Acoustic Energy, Optics, Mechanics आदि में मानी जाती है।

मनोवैज्ञानिकों की समस्या यह है कि भौतिक ऊर्जा (प्रकाश) और प्रत्यक्षीकरण करनेवाले प्राणों के अन्तक्रिया के परिणामस्वरूप कैसे प्रत्यक्ष (Percepts) का निर्माण होता है।

दूरस्थ एवं निकटस्थ उद्दीपक (Distal and Proximal Stimulus)

इस समस्या के प्रकृति के बारे में ज्ञान प्राप्त करने के लिए हम दूरस्थ (distal) एवं निकटस्थ (proximal) उदीपको के समात्ययों का उपयोग कर सकते है। दूरस्थ उद्दीपक का सम्बन्ध वाह्य जगत के भौतिक पक्ष अर्थात् वाह्य स्रोत द्वारा उत्पन्न भौतिक ऊर्जा से है जबकि निकटस्थ उद्दीपकों का सम्बन्ध उस भौतिक ऊर्जा से है जो सांवेदिक माहको को प्रभावित करता है। उदाहरणार्थ, किसी मकान से निकलने वाला प्रकाश दूरस्थ उद्दीपक है। जबकि आँख पर बनने वाली प्रतिमा निकटस्थ उहीपक है परन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि निकटस्थ एवं दूरस्थ उद्दीपको में हमेशा समानता नहीं पायी जाती है। इसके कई कारण है-

मनोविज्ञान एवं दर्शन

(Psychology and Philosophy)

ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो **प्रत्यक्षीकरण (perception)** की प्रक्रिया को पहले **दर्शनशास्त्र** के अंतर्गत रखा जाता था। दर्शनशास्त्र की जिस शाखा में इसका अध्ययन किया जाता है, उसे **ज्ञानमीमांसा (Epistemology)** कहा जाता है। ज्ञानमीमांसा में मुख्य रूप से यह प्रश्न उठाए जाते हैं कि—

- क्या भौतिक जगत हमारे अनुभवों से स्वतंत्र रूप से अस्तित्व में है?
- यदि भौतिक जगत वास्तव में मौजूद है, तो हम उसके तत्त्वों के बारे में ज्ञान कैसे प्राप्त करते हैं?
- तथा प्राप्त ज्ञान **कितना सही और शुद्ध (accurate)** है, इसका निर्धारण कैसे किया जाए?

इसके विपरीत **मनोवैज्ञानिकों का दृष्टिकोण** इन प्रश्नों से भिन्न होता है। मनोवैज्ञानिक इस बात पर अधिक विचार नहीं करते कि भौतिक जगत का अस्तित्व है या नहीं। वे भौतिक जगत की सत्ता को उसी प्रकार स्वीकार करते हैं, जैसे भौतिक विज्ञान की विभिन्न शाखाएँ—जैसे **विद्युत-चुंबकीय ऊर्जा (Electro-magnetic energy), ध्वनिक ऊर्जा (acoustic energy), प्रकाशिकी (optics), यांत्रिकी (mechanics)**—इसे स्वीकार करती हैं।

मनोवैज्ञानिकों के लिए मुख्य समस्या यह नहीं है कि भौतिक जगत है या नहीं, बल्कि यह है कि **भौतिक ऊर्जा (जैसे प्रकाश)** और उसे अनुभव करने वाले प्राणी के बीच होने वाली **अंतःक्रिया** के परिणामस्वरूप हमारे मन में **प्रत्यक्ष (percepts)** का निर्माण **कैसे होता है**।

दूरस्थ एवं निकटस्थ उद्दीपक

(Distal and Proximal Stimulus)

इस समस्या को समझने के लिए हम **दूरस्थ उद्दीपक** और **निकटस्थ उद्दीपक** की अवधारणाओं का सहारा लेते हैं।

दूरस्थ उद्दीपक (Distal Stimulus) का संबंध बाह्य जगत के भौतिक पक्ष से होता है। यह वह भौतिक ऊर्जा है, जो किसी बाह्य स्रोत से उत्पन्न होती है और वातावरण में मौजूद रहती है।

इसके विपरीत, **निकटस्थ उद्दीपक (Proximal Stimulus)** उस भौतिक ऊर्जा से संबंधित होता है, जो सीधे **संवेदी अंगों (sensory receptors)** को प्रभावित करती है।

उदाहरण के लिए—
किसी मकान से निकलने वाला **प्रकाश** दूरस्थ उद्दीपक कहलाता है। वहीं उसी प्रकाश के कारण **आँख के पर्दे (रेटिना)** पर बनने वाली प्रतिमा **निकटस्थ उद्दीपक** होती है।

यहाँ यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि **दूरस्थ और निकटस्थ उद्दीपकों में हमेशा समानता नहीं होती**। कई बार दोनों के बीच अंतर पाया जाता है, और इसके पीछे अनेक कारण हो सकते हैं।

प्रकृति (Nature)

प्रत्यक्षीकरण (Perception) एक **जटिल मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया** है। इसके माध्यम से व्यक्ति अपने **बाह्य वातावरण** में होने वाली घटनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करता है और फिर उस जानकारी की **व्याख्या करता है**। जिस वातावरण में कोई प्राणी रहता है, वहाँ अनेक प्रकार की **उत्तेजनाएँ (stimuli)** मौजूद रहती हैं। प्राणी इन उत्तेजनाओं को अपनी **ज्ञानेन्द्रियों** के माध्यम से ग्रहण करता है और उनके प्रति अपने **शारीरिक व्यवहार** तथा **वाचिक व्यवहार** के रूप में प्रतिक्रिया करता है।

आमतौर पर हम इस बात पर ध्यान नहीं देते कि यह पूरी प्रक्रिया **कैसे घटित होती है**, क्योंकि यह हमें बहुत सामान्य और सरल लगती है। वास्तव में यह प्रक्रिया तभी सरल होती है, जब प्राणी के पास उस वस्तु या घटना के बारे में **पूर्ण संकेत उपलब्ध होते हैं**। जब सभी आवश्यक संकेत मौजूद होते हैं, तब व्यक्ति अपने **पूर्व अनुभवों** के आधार पर उद्दीपकों के बारे में **तात्कालिक ज्ञान** प्राप्त कर लेता है और प्रत्यक्षीकरण सरल हो जाता है।

लेकिन जब वातावरण से मिलने वाले संकेत और प्रत्यक्षीकृत उद्दीपक की विशेषताएँ **संवादी (corresponding)** नहीं होतीं, तब प्राणी न तो सही प्रत्यक्षीकरण कर पाता है और न ही किसी समस्या का समाधान कर पाता है। जब ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से बाह्य जगत में उपस्थित उद्दीपकों के बारे में **पूर्व अनुभवों के आधार पर उनके नाम, रूप और गुणों** का ज्ञान प्राप्त किया जाता है, तो ज्ञान प्राप्त करने की इस प्रक्रिया को **प्रत्यक्षीकरण** कहा जाता है। अर्थात् प्रत्यक्षीकरण वह प्रक्रिया है, जिसमें **संवेदना को अर्थ प्रदान किया जाता है**।

जब कोई उद्दीपक हमारी ज्ञानेन्द्रियों के संपर्क में आता है, तो उससे संबंधित ज्ञानेन्द्रियाँ सक्रिय हो जाती हैं। उदाहरण के लिए, किसी बाह्य वस्तु से निकलने वाली **सूचना प्रकाश या विद्युत-चुंबकीय ऊर्जा** के रूप में

आँख तक पहुँचती है। इसके बाद आँख की तंत्रिकाओं में **रासायनिक परिवर्तन** होते हैं, जो आगे चलकर **स्नायु आवेग (nerve impulses)** के रूप में मस्तिष्क तक पहुँचते हैं। आँख और मस्तिष्क के बीच **तंत्रकीय परिपथ (neural circuits)** होते हैं, जो इस पूरी प्रक्रिया में मध्यस्थता करते हैं।

जब ये स्नायु आवेग मस्तिष्क तक पहुँचते हैं, तो मस्तिष्क उन्हें व्यक्ति के **पूर्व अनुभवों और साहचर्यों** के आधार पर अर्थ प्रदान करता है। इसी के परिणामस्वरूप हमें किसी वस्तु या घटना का **प्रत्यक्षीकरण** होता है। स्नायुमंडल की यह प्रक्रिया ऐसी होती है, जिसका **सीधा निरीक्षण संभव नहीं है**। इस प्रकार कहा जा सकता है कि **संवेदना को सही अर्थ मिल जाने पर प्रत्यक्षीकरण होता है**।

वातावरणीय उद्दीपकों के प्रत्यक्षीकरण में **प्राणी की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण** होती है। इसी कारण यह कहा गया है—**"We perceive the world not as it is but as we are"**, अर्थात् हम संसार को जैसा है वैसा नहीं, बल्कि जैसे हम स्वयं हैं वैसा देखते और समझते हैं।

संवेदना (Sensation) और **प्रत्यक्षीकरण (Perception)** में स्पष्ट अंतर होता है। जब किसी उद्दीपक का ज्ञान सरल रूप में प्राप्त होता है और वह ज्ञान अर्थहीन होता है, तो उसे **संवेदना** कहा जाता है। इसके विपरीत, प्रत्यक्षीकरण एक **जटिल और सार्थक ज्ञान** है। संवेदना में हमें वस्तु की केवल **भौतिक विशेषताओं** का साधारण ज्ञान होता है, जबकि प्रत्यक्षीकरण में वस्तु के **गुण, रूप और अर्थ** का बोध होता है।

संवेदना में संग्राहकों (receptors) के द्वारा उत्तेजना को ग्रहण करना और उसे मस्तिष्क तक पहुँचाने की प्रक्रिया शामिल होती है, जबकि प्रत्यक्षीकरण में उसी संवेदना को **अर्थ प्रदान किया जाता है**। किसी वस्तु की संवेदना प्रायः सभी व्यक्तियों में समान होती है, लेकिन उसका प्रत्यक्षीकरण व्यक्ति-व्यक्ति में भिन्न हो सकता है। इसी आधार पर कहा जाता है कि—
"संवेदना का संबंध संग्राहक के उद्दीप्त होने से है, जबकि प्रत्यक्षीकरण का संबंध उस संवेदना को अर्थ देने से है।"

बोरिंग (1942) के अनुसार—
"Sensation refers to the action by a receptor when it is stimulated, and perception refers to the meaning given to the sensation."

वुण्ट (Wundt) ने संवेदना को ज्ञान की **पहली अवस्था या सीढ़ी** तथा प्रत्यक्षीकरण को **दूसरी अवस्था** माना है। उनके अनुसार प्रत्यक्षीकरण, **संवेदना और उसके अर्थों का योगफल** होता है—
"Perception is the sum total of sensations and their meanings."

इसके विपरीत, **गेस्टाल्टवादियों** ने साहचर्यवाद (Associationism) और परमाणुवाद (Atomism) के इस विचार को अस्वीकार कर दिया। गेस्टाल्टवादियों के अनुसार उद्दीपक का **प्रथम अनुभव ही सार्थक होता है**, और वही प्रथम अनुभव संपूर्ण अर्थ प्रदान करता है।